क्यों हमारे वैज्ञानिक बोलते नहीं?

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

हमारे प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी ने यह कह कर एक विवाद छेड़ दिया है कि हम महाभारत के समय से स्टेम कोशिका विज्ञान को जानते हैं और तब से उसका उपयोग कर रहे हैं; भगवान गणेश को हाथी का सिर प्लास्टिक सर्जरी के ज़रिए लगाया गया था। प्रधान मंत्री के उक्त वक्तव्य ने कल्पना और मायथॉलॉजी, इतिहास और विज्ञान के बीच के सम्बंध की ज़रूरी बहस को फिर से शुरू कर दिया है।

भौतिकविद विक्रम सोनी और इतिहासकार रोमिला थापर ने *दी हिन्दू* (7 नवम्बर 2014) में इसके बारे में लिखा है, "निसंदेह, कल्पना एक ज़बर्दस्त सृजनात्मक ताकत रही है और आज भी है। इस तरह की कल्पना कभी-कभी भविष्यदृष्टा साबित हो सकती है। कभी-कभी इसका सम्बंध वास्तविकता से जोड़ दिया जाता है और भविष्य का अनुमान लगा लिया जाता है। जबकि भारत में आज दावा किया जा रहा है इस कल्पना का सम्बंध अतीत के यथार्थ से है।" वे आगे कहते हैं, "मिथक प्राचीन दंतकथाएं हैं, जबकि इतिहास उसकी बात करता है जो माना जाता है कि वास्तव में हुआ था। विज्ञान इसका एक हिस्सा है। इतिहास और विज्ञान के स्थान पर मायथॉलॉजी को रखना गलत है और कुछ लोग तो कहेंगे कि मात्र ख्याली पुलाव है।"

मायथॉलॉजी के आधार पर यह दावा करना क्यों गलत है कि आधुनिक विज्ञान हमारे पूर्वजों को ज्ञात था और वे सदियों पहले इसका इस्तेमाल किया करते थे? क्योंकि इसके लिए प्रमाण की ज़रूरत होती है। विज्ञान तर्क, जानकारी के विश्लेषण, बार-बार दोहराकर, खंडन करके, प्रमाण और भविष्यवाणी के ज़रिए आगे बढ़ता है। यदि कोई यह दावा करता है कि हड़प्पा समुदाय शहर नियोजन और वास्तु कला में निपुण था, तो हम इसे स्वीकार करते हैं क्योंकि पुरातत्व और खुदाई के माध्यम से हमें इसके सबूत मिलते हैं।

संत बौधायन और अपस्तंबा ने गणित में घात श्रृंखला का विस्तार किया था या पायथागोरस से पहले 'पायथागोरस प्रमेय' प्रतिपादित की थी। हमने इस बात को स्वीकार किया क्योंकि हमें उनकी रचनाएं मिली हैं जिनका इस्तेमाल करके जांचा गया है।

इसी प्रकार से चिकित्सक सुश्रुत और चरक जो ग्रंथ छोड़ गए हैं, उनकी मदद से उनके कामकाज के पुख्ता प्रमाण मिलते हैं और कई सुझाव प्राप्त हुए हैं। ये ग्रंथ संस्कृत भाषा में थे जिनका अंग्रेज़ी व आधुनिक चिकित्सा की भाषा में अनुवाद प्रोफेसर एम.एस. वालियथन ने किया है।

अमेरिकन प्रोफेसर विलियम डोमिंग का कहना है, 'हमें भगवान पर विश्वास है, बाकी सबको प्रमाण देना होगा।' लिहाज़ा, मुझे लगता है कि हम कुंती या गांधारी सम्बंधी दावों को स्वीकार नहीं कर सकते और न ही यह मान सकते हैं कि महाभारत में जरासंध दो हिस्सों में पैदा हुआ था और राक्षसी जरा द्वारा उसे जोड़कर एक शरीर के रूप में जीवित किया गया था। हम यह भी स्वीकार नहीं कर सकते कि प्राचीन काल में हमारे पास वायुयान रहे होंगे।

टीवी टीकाकार करन थापर ने *दी हिन्दू* (1 नवम्बर 2014) के अपने लेख में कहा है कि मैं अचंभित हूं कि किसी भी भारतीय वैज्ञानिक ने प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी के दावे का खंडन नहीं किया और यह चुप्पी हैरान करने वाली है। इस महत्वपूर्ण बिन्दु पर हमें ध्यान देने की ज़रूरत है। दी हिन्दू में थापर के लेख पर प्रतिक्रियाएं अगर-मगर वाली हैं, न इधर की, न उधर की। लेकिन एक वैज्ञानिक शरत अनंतमूर्ति की प्रतिक्रिया रोचक है। उनका कहना है कि भारत में तीन तरह के वैज्ञानिक हैं। एक हैं जो प्रतिक्रिया देने में बहुत शर्मिंदगी महसूस कर रहे हैं। दूसरे हैं जिन्हें किसी सार्वजनिक व्यक्ति द्वारा व्यक्त राय से कुछ लेना-देना नहीं है और वे अपनी प्रयोगशालाओं में सहज महसूस करते हैं और चाहते हैं कि शोध के लिए फंड निर्बाध रूप से मिलता रहे। और तीसरे प्रकार के वैज्ञानिक हैं जो हमारी

महान भारतीय वैज्ञानिक विरासत को बचाने के उत्साह में स्कूल-कॉलेज में ऐसे ही ऊटपटांग भाषण देते रहते हैं। अनंतमूर्ति कहते हैं कि इस सारे चक्कर में कहीं हम गणित, खगोल शास्त्र, धातुकर्म वगैरह क्षेत्रों में भारत की कुछ वास्तविक उपलब्धियों को अनदेखा न कर दें।

इन तीन तरह की प्रतिक्रियाओं के पीछे क्या कारण हो सकते हैं, और इस तरह की प्रतिक्रियाएं यूके और यूएस जैसे अन्य देशों की तुलना में कहां बैठती हैं? उन देशों के विपरीत हमारे यहां विज्ञान और उच्च शिक्षा मूलतः सरकार के समर्थन पर टिके हैं। अक्सर इस हद तक कि पाठ्यक्रम में क्या शामिल किया जाए। निदेशक और कुलपति सरकारी कर्मचारी होते हैं। शोधकर्ताओं और वैज्ञानिकों के कैरियर ग्राफ और उनके वेतन ये सब सरकार द्वारा निर्धारित होते हैं। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, कृषि, समाज शास्त्र के लिए सभी तरह के शोध अनुदान सरकारी होते हैं। विश्व के 80 अन्य देशों के समान हमारी क्षेत्रीय और राष्ट्रीय विज्ञान अकादमियां सरकारी समर्थन से चलती हैं। दूसरी ओर यूके और यूएस की अकादमियां केवल सरकार पर आश्रित नहीं हैं। इसके मद्देनज़र हमारे यहां के 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' नुमा वातावरण में बोलने में हिचकिचाहट होती है। यह भी ध्यान देने की बात है कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि सरकार किस पार्टी या विचारधारा की है; बौद्धिक स्वतंत्रता की कटौती या तो खुद होकर की जाती है या किसी छुपे हुए दबाव से होती है।

क्या भारत में एक भी ऐसा प्राइवेट, गैर-सरकारी संगठन है जिसकी तुलना हम यूके के वेलकम ट्रस्ट, पुर्तगाल के चेम्पालिमौड फाउंडेशन या यूएस के सैकड़ों छोटे-बड़े प्रतिष्ठानों से कर सकें? माओ त्से तुंग का कहना था कि सैकड़ों फूलों को खिलने दो और विचारों के सैकड़ों घरानों को प्रतिस्पर्धा करने दो। हमारे रईस व्यापारी (कुछ तो हमारी सरकार से भी ज़्यादा रईस) इस पर कब सोचेंगे? उनके पास पैसा है, दर्शन नहीं। जब तक इस तरह की वैचारिक गतिविधियों को समर्थन देने के लिए इस तरह के गैर-सरकारी संगठन नहीं बनाए जाते, तब तक केवल मेरे जैसे 'सेवानिवृत्त' वैज्ञानिक, जो अपने वेतन के लिए सरकार पर निर्भर नहीं हैं, इसके खिलाफ आवाज़ उठाएंगे। (वैसे हो सकता है मैंने भी बोलने में जल्दबाज़ी कर दी है, क्योंकि मुझे अभी भी अनुसंधान के लिए अनुदान की ज़रूरत तो होती ही है।) ***(स्रोत फीचर्स)***